प्रकाशित: 28 अगस्त 2017 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में प्रकाशित -

कांग्रेसी सरकारों की वोट बैंक की राजनीति का शिकार बनी भारतीय रेल

रमेश कुमार दुबे

रेलमंत्री सुरेश प्रभु ने हाल ही में हुई रेल दुर्घटनाओं की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए इस्तीफे की पेशकश करके जो प्रतिमान स्थापित किया है वह आज की सत्तालोभी राजनीति में दुर्लभ है। सबसे बढ़कर जहां पूर्व रेलमंत्रियों के भष्टाचार के नित नए मामले उजागर हो रहे हैं वहीं सुरेश प्रभु के उपर भ्रष्टाचार का एक भी आरोप नहीं लगा। अपने इस्तीफे में रेल मंत्री ने लिखा है कि दशकों से उपेक्षित रेलवे की खामियां दूर करने में मैंने अपना खून-पसीना एक कर दिया। देखा जाए तो उनका कथन एकदम सही है क्योंकि वे जरूरतमंद बच्चों को दूध से लेकर बीमार यात्रियों को एंबुलेंस तक मुहैया कराने में चौबीसों घंटे तत्पर रहते हैं। कई मौके पर उन्होंने कहा है कि तीन साल में 60 साल के बराबर काम हुआ। पहले जहां हर रोज महज चार किलोमीटर रेल लाइन बिछती थी, वहीं अब 19 किलोमीटर रेलवे लाइन बिछ रही है। इतना ही नहीं, सुरेश प्रभु के रेलमंत्रित्व काल में आम जनता को दीनदयाल, अंत्योदय, उदय, तेजस, हमसफर जैसी रेलगाड़ियों की सौगात मिली। रेलवे के ठेकों में वर्षों से कब्जा जमाए बैठे भ्रष्ट ठेकेदारों को वर्चस्व को तोड़ने का श्रेय उन्हीं को जाता है। इतना ही नहीं भविष्य में रेलवे के ठेकों में भ्रष्टाचार न पनपे इसके लिए उन्होंने ई-टेंडरिंग की भी शुरूआत की।इसमें कोई दो राय नहीं कि आज देश में रेलवे का ढांचा चरमरा रहा है, लेकिन इसके लिए सुरेश प्रभु नहीं सर्वाधिक समय तक सत्तारूढ़ रही कांग्रेसी सरकारों के दौरान रेलवे के जरिए साधी जाने वाली वोट बैंक की राजनीति जिम्मेदार है। वैसे तो राजनीतिक हित साधने के लिए रेलवे का इस्तेमाल आजादी के बाद से ही होने लगा था, लेकिन 1990 के दशक में देश में शुरू हुई गठबंधन राजनीति के दौर में इसने समस्या का रूप ले लिया। सहयोगी दलों से बनने वाले ज्यादातर रेल मंत्रियों ने इसका जमकर फायदा उठाया और उनमें रेलवे व उससे जुड़ी परियोजनाओं को अपने-अपने गृह राज्य व संसदीय क्षेत्र में ले जाने की होड़ मच गई। उदाहरण के लिए जिन ममता बनर्जी ने 1997-98 के रेल बजट में पश्चिम बंगाल की उपेक्षा से नाराज होकर तत्कालीन रेल मंत्री राम विलास पासवान की ओर गुस्से में अपनी शॉल फेंकी थी; उन्हीं ममता बनर्जी ने जुलाई 2009 में रेल मंत्री बनते ही पश्चिम बंगाल में रेल परियोजनाओं की झड़ी लगा दी। उनके कार्यकाल में पूरे देश की रेल परियोजनाएं एक तरह से

ठप कर दी गईं ताकि उन परियोजनाओं के पैसे से पश्चिम बंगाल की परियोजनाओं को युद्ध स्तर पर चलाया जा सके।

क्षेत्रीय असंतुलन के साथ गटबंधन राजनीति का दूसरा नतीजा रेलवे की कंगाली के रूप में सामने आया। दरअसल इस दौरान रेलवे को वोट बैंक की राजनीति से इस तरह जोड़ दिया गया है कि कोई भी पार्टी नहीं चाहती कि किरायों में बढ़ोत्तरी का तमगा उसके सिर लगे। इसका दुष्परिणाम रेलवे के बढ़ते घाटे के रूप में सामने आया। अब तो स्थिति यह हो गई है कि रेलवे को अपने रोजमर्रा के खर्चे के लिए सरकार से कर्ज लेना पड़ रहा है। रेलवे की कंगाली का ही नतीजा है कि 28000 से ज्यादा पुल सौ साल की उम्र पूरी कर चुके और इन पर कॉशन के सहारे गाड़ियां पास कराई जा रही हैं। वैगन, कोच और इंजनों की भीषण तंगी है। रेलवे को अपने मनमुताबिक चलाने वाले रेल मंत्रियों ने यात्री किरायों में घाटे की भरपाई माला भाड़ा से करने की गलत परिपाटी शुरू कर दी। अर्थशास्त्र की भाषा में इसे "क्रास सब्सिडी" कहा जाता है। इसका नतीजा यह हुआ कि हमारे देश में माल भाड़ा तेजी से बढ़ा और माल ढुलाई के काम का एक हिस्सा रेलवे के हाथों से निकलकर कर ट्रक कारोबारियों के पास जाने लगा। उदाहरण के लिए 1970-71 में कुल ढुलाई में रेलवे की हिस्सेदारी 70 फीसदी थी जो कि आज 30 फीसदी रह गई है। आज सड़कों पर माल ढोने वाले विशालकाय ट्रकों का रेला लगा है तो इसकी एक वजह रेल माल भाड़े की ऊंची दर के साथ-साथ लेट लतीफी है। माल ढुलाई की ऊंची दरों का एक अन्य परिणाम बढ़ती महंगाई के रूप में सामने आया। गठबंधन राजनीति के दौर में राष्ट्रीय के बजाए क्षेत्रीय जरूरतों को ध्यान में रखे के कारण चुनिंदा लाइनों पर ही गाड़ियां बढ़ाई गईं जिसका नतीजा बढ़ते कंजेशन व लेट-लतीफी के रूप में सामने आया। हालत यह है कि दिल्ली-हावड़ा, दिल्ली-मुंबई और दिल्ली गुवाहाटी जैसे रूटों पर रेलवे लाइन 140 फीसदी तक संतृप्त है। अर्थात निर्धारित क्षमता से 40 फीसदी ज्यादा गाड़ियां दौड़ाई जा रही हैं। चूंकि वर्षों बाद रेल मंत्रालय वोट बैंक और गटबंधन की राजनीति से मुक्त होकर खुली हवा में सांस लेना शुरू किया है, इसलिए इसका विरोध होना स्वाभाविक ही है। सुरेश प्रभु से इस्तीफा मांगने की असली वजह यही है। भ्रष्टाचार की लॉबी ने जिस प्रकार ऊर्जा मंत्री के रूप में सुरेश प्रभु को हटवाया था, उसी प्रकार की राजनीति रेल मंत्रालय में हो रही है। स्पष्ट है, सुरेश प्रभु के इस्तीफे से रेलवे की बदहाली तो दूर नहीं होगी लेकिन भ्रष्ट तत्वों को फिर से पनपने के मौके जरूर पैदा हो जाएंगे।

(लेखक केन्द्रीय सचिवालय में अधिकारी हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)